हिन्दी उपन्यास : नारी विमर्श

संपादक
डॉ० शोभा वेरेकर

अभय प्रकाशन, कानपुर

ISBN : 978-93-80719-06-1

पुस्तक : हिन्दी उपन्यास : नारी विमर्श

संपादक : डॉ० शोभा वेरेकर

प्रकाशक : अभय प्रकाशन, 6A/540, आवास विकास
हंसपुरम् कानपुर–208 021
Mo. : 09451877266, 09305301995

संस्करण : प्रथम 2010

मूल्य : 360.00

शब्दसज्जा : विष्णु ग्राफिक्स, गल्ला मण्डी
नौबस्ता, कानपुर, मो० 08009017637

मुद्रक : मधुर प्रिण्टर्स
किदवई नगर, कानपुर

जिल्दसाज : तवारक अली, पटकापुर, कानपुर

HINDI UPANYANS : NARI VIMARSH

By : Dr. Shobha Verekar

Price : Rs. Three Hundred Sixty Only

15.

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासों में मुस्लिम नारी

– डॉ० इशरद खान

यह कहना बिल्कुल सही होगा कि मुस्लिम-औरतों की स्थिति मुस्लिम समाज में अच्छी नहीं है। ऐसा इसलिए कि भारत में मुस्लिम-समाज में कोई खास बदलाव नहीं आया। मुस्लिम पर्सनल लॉ औरतों को कुछ अधिकार देता है लेकिन पुरुषों की अपेक्षा कम। इसका प्रमुख कारण है धर्म। नारी की समस्याओं का समाधान धर्म के आधार पर ही किया जाता है।[1] आज भी मुसलमान स्त्रियाँ भारत के किसी भी कोने में रहती हों उनकी तकलीफें एक जैसी है वे कराह रहीं हैं, चीख रही हैं- हमें इन धार्मिक बेड़ियों से मुक्त करो। इसी के साथ वे पितृसत्तात्मक समाज द्वारा भी सताई गई है। उन्हें बराबरी का और संवैधानिक अधिकार मिलना चाहिए। वे खामोशी से इन अत्याचारों को कब तक सहती रहेंगी और रुढ़ियों से जकड़ा समाज कब तक इनके रास्ते रोकता रहेगा। वही इस्लाम, शरीअत, हदीस एवं पुरुष वर्चस्व ही प्रधान है। इस संबंध में 'हदीस' से कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

१ "हजरत मोहम्मद ने फरमाया है कि अगर मैं खुदा के सिवा किसी और को सिजदा करने के लिए कहता तो औरत को सिजदा करने के लिए कहता तो औरत को जरुर हुक्म देता कि अपने मियाँ को सिजदा करो।"[2]

२ "इसकी (मियाँ) आँख के इशारे पर चला करो। अगर वह हुक्म करे कि रात भर हाथ बाँधे खड़ी रहो तो दुनिया और आखरत की भलाई इसी में है कि दुनिया की थोड़ी–सी तकलीफ गंवारा करके आखरत की भलाई और सुर्ख रुई हासिल करो।"[3]

'केरल महिला आयोग', 'इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज', 'सिदमतगार समिति' (महासचिव, शाहीन)[4], 'मुस्लिम-महिला एसोसिएशन' (अध्यक्षा, हुस्ना सुभानी मलिक)[5] और 'राष्ट्रीय महिला-आयोग' आदि संस्थाएँ मुस्लिम नारियों के अधिकारों एवं प्रगति के प्रति सजग है और समय-समय पर अनेक कार्यशालाएँ एवं गोष्ठियाँ आयोजित करती रहती है। लेकिन इसके साथ ही इन नारियों की दयनीय स्थिति से साहित्यकार भी बेखबर नहीं है। हिन्दी-उर्दू[6] के उपन्यासकार मुस्लिम समाज में नारी-स्थिति को रेखांकित करते हुए उसे चेतन सम्पन्न नारी बनाने में प्रयत्नशील है।

हिन्दी उपन्यासों में हिन्दू, सिक्ख और ईसाई आदि नारी पात्र बहुतायत से मिलते हैं लेकिन मुस्लिम-नारियों का चित्रण कुछ ही उपन्यासों में हुआ है। इस दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यास महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।[४] प्रेमचंद के बाद विशेषकर उपन्यासों से मुस्लिम चरित्र धीरे-धीरे गायब होते चले जा रहे है। इस कमी को सर्वप्रथम 'गुलशरे खान शानी' ने महसूस किया और उन्होने यह प्रश्न उठाया कि "हमारे कथासाहित्य से मुस्लिम पात्र क्यों कट रहे हैं ?" इस संदर्भ में गोपालराय का कहना है, "शानी इस बात को बहुत शिद्दत के साथ महसूस करते थे कि हिंदी उपन्यास में मुस्लिम-जीवन का चित्रण बहुत कम हुआ है। कहा जा सकता है कि शानी ने इस अभाव को दूर करने की गौरवपूर्ण शुरुआत की।"[५] प्रेमचंद के अतिरिक्त यशपाल, चतुरसेन शास्त्री वृदावनलाल वर्मा, कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी के उपन्यासों में यह समाज इतना कटा हुआ नहीं दिखता। 'कालाजल' (शानी), 'कारेजा', 'अकेला पलाश' (मेहरुन्निसा परवेज), 'ठीकरे की मंगनी', 'जिंदा मुहावरे' (नासिरा शर्मा), 'सूखा बरगद', 'दास्तान ए लापता' (मंजूर एहतेशाम) जैसे उपन्यासों में मुस्लिम-समाज एवं मूस्लिम-नारी का चित्रण व्यापक फलक पर हुआ।

उपर्युक्त औपन्यासिक कृतियों को पढ़ने के पश्चात मुस्लिम-नारियों से सम्बन्धित कुछ तथ्य उजागर होते हैं। इन्हीं तथ्यों के आधार पर मुस्लिम-नारियों की स्थिति को समझने-परखने का प्रयास किया गया है।

इन उपन्यासकारों ने मुस्लिम नारियों की मानसिक उलझनों, उनकी घुटी–घुटी जिंदगी से जुड़ी हुई समस्याओं और मानसिक पिछड़ेपन को अपने उपन्यासों में विशेष महत्व दिया है। मुस्लिम समाज की नारियाँ हमेशा से पुरुषों के हाथों प्रताड़ित होती रही है। शरीअत, हदीस का भरपूर फायदा उठाकर, पुरुष औरत पर मनचाहा हुक्म चलाता रहता है और उसके हुक्म को मानना उसकी मजबूरी बन जाती है। 'काला जल' की छोटी फूफी पर पति एवं सास दोनों ही अत्याचार करते रहते है। पति रोशन के शब्द इसकी गवाही से देते हुए प्रतीत होते हैं- "अम्माँ, उनके या इस दस्तूर के बिना यदि काम चल सके तो उन्हें न बुलाओ, वे लोग बड़े और पढ़े-लिखे आदमी हैं हम लोगों को गँवार समझते हैं।"[६] अगर छोटी फूफी सास की डाँट-फटकार का प्रतिकार करने की कोशिश करती तो उनकी आवाज को बंद कर दिया जाता। इस उपन्यास की सबसे शक्तिशाली पात्र सल्लो आपा, घर की चाहरदीवारी से बाहर आना चाहती है- अश्लील पुस्तकें देखकर या लड़कों के कपड़े पहनकर उनकी आदतें और अदाएँ बनाकर लीक छोड़कर अलग रास्ता अपनाना चाहती हैं, लेकिन सफल नहीं हो पाती है। सल्लो का करुण अंत होता है अर्थात मार दी जाती है।

'कोरजा' उपन्यास के समस्त निम्नवर्गीय नारी-पात्र विवश है। नानी माँ, नसीमा, रब्बो आपा, कम्मो और साजो खाला सभी परिस्थितियों की गुलाम है।

इसमें 'साजो खाला' के रुप में जिस विधवा नारी का चित्रण हुआ है वह सामाजिक शोषण के नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करता है। परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण मकान-मालिक जुम्मन उसका नित्य यौन शोषण करता है।

मुस्लिम नारी समाज में अनेक रुढ़ियाँ और अंधविश्वास व्याप्त है। इसी कारण ये नारियाँ प्रगति की दौड़ में पीछे रह जाती है।.............विवाह से सम्बन्धित एक रुढ़ि (बचपन की मँगनी) आज भी मुस्लिम समाज को खोखला कर रही है। मुस्लिम विवाह पद्धति के अनुसार सगे अर्थात एक माँ-बाप के 'जाय' और 'दूध-शरीके' भाई-बहनों के सिवा सबसे विवाह हो सकता है। कई बार तो माँ-बाप, बेटी-बेटे के लिए उनके बचपन से ही वचनबद्ध हो जाते हैं जिसका कभी-कभी भयंकर परिणाम होता है। इसी सच्चाई को 'ठीकरे की मंगनी' में महरुख-रफत के माध्यम से दखाया गया है। यह मंगनी टोटके के रस्म के रुप में प्रारम्भ होती है और खाला शाहिदा ने इस टोटके को गंभीरता से लेते हुए इसे अपने बेटे 'रफत' के लिए 'महरुख- की मँगनी का रुप दे दिया था। एक मुस्लिम परिवार की लड़की होने के नाते महरुख, रफत को अपना बहुत कुछ समझने लगी थी- लेकिन यह मँगनी, विवाह में परिणित नहीं हो पाती।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक धर्मभीरु होती है। वे इस्लाम को ईश्वरीय धर्म मानती है और उसमें उन्हें कोई परिवर्तन स्वीकार्य नहीं। दरअसल इस्लाम भी नारियों को ऐसी ही शिक्षा देता है कि इस्लाम धर्म के बने-बनाए सिद्धांतो और नियमों पर ही वे चलें। शबरात में मृतात्माओं का फातिहा करवाना, मोहर्रम में तो इन नारियों का मजहबी जोश देखते ही बनता है- कभी-कभी तो उनके मनाने का ढंग इतना हास्यापद हो जाता है कि इन स्त्रियों की अक्ल पर तरस आता है। इस्लाम में मूर्तिपूजा का निषेध है इसीलिए तस्वीर रखना और खिंचवाना दोनों ही वर्जित है। कुरान जोकि इस्लाम का निचोड़ है उसका प्रयोग तो मानवता की भलाई के लिए करना चाहिए लेकिन यहाँ औरतें उसका प्रयोग जादू-टोने के रुप में करती है, दूसरों के नुकसान के लिए करती है। क्या इस्लाम यही सिखाता है। मुस्लिम उपन्यासकारों ने मुस्लिम नारियों में व्याप्त इन धार्मिक आडम्बरों, रुढ़ियों, कुरीतियों तथा धर्म के ठेकेदारों, कठमुल्लाओं पर तीखा व्यंग्य किया है।

'सूखा बरगद' की फफू इस्लाम धर्म की सख्त पाबंद है। शरीअत के अनुसार ही जीवन बिताने के पक्ष में है। कुरान पढ़ने आए बच्चों को भी इस्लाम धर्म की बातों को सीखने व उस पर अमल करने की शिक्षा देती है। इसी के साथ तस्वीर रखने व खिंचवाने की वह खिलाफ थीं लेकिन बक्से से निकालकर अपने पति की फोटो को दिन में एक बार अवश्य देखती थीं तथा मक्के-मदीने की फोटो भी कमरे में लगाती थी। फफू के यह कहने पर कि, "तस्वीर खिंचवाने के बाद तो कभी किसी की मगफिरत हो ही नहीं सकती थी।"[10] इस पर सुहेल कहता है- "फफू हमारे नन्हें चचा भी हज करने जा रहे हैं। पासपोर्ट के लिए फोटों खिंचवाया

है। आप भी हज करने जाएँगी तो क्या फोटो खिंचवाना पड़ेगा ? क्या नन्हें चचा पर भी गुनाह होगा, फोटो खिंचवाने का।"[११] 'दास्तान ए लापता' की 'चची' रोजा-नमाज तो नहीं करती हैं, 'हज' करने की दिली तमन्ना है- लेकिन वहाँ जाकर उनका भ्रम टूट जाता है। सारी आस्थाएँ धराशायी हो जाती है। उनका कहना है-

"तुम जब हज करने जाओ तो यह अज्र कमाने को मिले। हम तो लाख-लाख शुक्र अदा करते हैं कि वापस लौट आए और अब अपने घर में ही मरेंगे। कोई बात होती है, भला अजनबी लोगों के बीच बे-गोरो-कफन मरना।"[१२] इस्लाम के कठमुल्लाओं के लिए भी दुल्हन चची के मन में कोई रहम का खाना नहीं था। "वह उन्हें आमतौर पर शैतान की दुम कहा करती थी।"[१३]

मुस्लिम नारी संबंधी इन अंधविश्वासों, रुढ़ियों और समस्यायों के चित्रण के पश्चात मुस्लिम उपन्यासकारों का एक ही मुख्य उद्देश्य रहा है कि शिक्षा, मानसिक रुप से पिछड़ी इन नारियों को जागरुक करना और चेतन सम्पन्न बनाना। प्रायः यह चेतना सभी उपन्यासों में दिखाई देती है लेकिन 'कोरजा' और 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं..... 'कोरजा' की 'फातमा' अपने अधिकारों को पहचानने वाली प्रगतिशील नारी है। 'फातमा का पति' उस पर अत्याचार करता है और उससे जबरदस्ती तलाक लेना चाहता है। समझौता करवाने आए लोगों से वह स्पष्ट कहती है "मैं क्यों मायके जाऊँ, फिर मायके में मेरा कौन है, जो मुझे पालेगा- वह कहीं रहे, किसी औरत के साथ रहे, मुझे आधी तनख्वाह भेज दे।"[१४] इसी उपन्यास में रब्बो आपा और जरमान बी भय के कारण विवाह पूर्व के गर्भ को गिराने के लिए विवश हैं। वह समाज में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने का साहस नहीं कर पाती क्योंकि वे असमर्थ एवं अक्षम है किन्तु वहीं रब्बो आपा, रन्नो बैटी की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर अंकुश नहीं लगा पाती है। वे नसीमा से कहती है- "नस्सो इसे दिन चढ़े हैं, दोनों एकदम खुलकर रहते थे। मेरी ही जिद्द पर यह शादी जल्दी हो रही है। वरना यह दोनों को तो कोई चिंता नहीं थी, क्या जमाना आ गया है।"[१५]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास भी मुस्लिम समाज में स्त्री के रुढ़िवादी परिवेश से किए गए संघर्ष को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की प्रमुख पात्र महरुख की मंगनी जन्म के समय ही 'रफत' नामक बालक से कर दी जाती है। इसी बीच रफत उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका चला जाता है। वहाँ उसका 'वालैरी' नामक लड़की के साथ 'लिविंग टुगेदर' जैसी जिंदगी गुजारना मासूम महरुख की जिंदगी को झकझोर डालने के लिए काफी था। उसका आहत मन सिसक उठता है- "शादी की बात सुनकर मैं टूटी-बिखरी थी, और उस दीवानगी में, मैं मरते-मरते बची थी, मेरी जिंदगी का खूबसूरत लम्हा सबसे बदसूरत और डरावना होकर मेरे सामने खड़ा हो गया.....मेरे अंदर की औरत उसी लम्हें मर गई।"[१६] वालेरी के अमेरिका वापस चले जाने पर रफत, महरुख के सामने शादी का प्रस्ताव रखता

है। उसके सभी परिवार-जन इसके लिए तैयार हो जाते हैं। पर महरुख इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। वह रफत से कहती है, "मैं जगह, चीज या मकान नहीं थी जो वैसी की वैसी ही रहती है। मैं इंसान थी कमजोरियों का पुतला। मैंने आपको जिस भरोसे से भेजा था, आप भी वैसे कहाँ रह पाए? कुछ चीजें कितनी बेआवाज टूटती है। मैं बेआवाज टूटी थी, किरच-किरच होकर बिखरी थी। बड़ी मुश्किल से अपने को चुना है, समेटा है, जोड़ा है, तब कहीं जीने के काबिल हुई हूँ। मुझसे अब मेरी जिंदगी वापस मत लीजिए।"[७] आगे वह कहती है– "मैं ठोस जमीन पर ठोस जिंदगी जीना चाहती हूँ। मेरी जिंदगी पर सिर्फ मेरा हक है।"[८]...और अंत में महरुख परिवार में भी एक बड़ा निर्णय लेती है....उसी गाँव में लौट जाने का जहाँ उसे सबका प्यार मिला था।....यह एक विकसित नारी की सोच ही कही जा सकती है.....महरुख कहती है....."एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप, शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो....मेरा अपना घर वही पुराना है जहाँ मैं पिछले तीस साल रही हूँ. ....तुम लोग अपने-अपने घर लौट रहे हो, मैं अपने घर लौट रही हूँ।"[९]

मुस्लिम-समाज में स्त्री-शिक्षा का निषेध रहा है। अगर स्त्री शिक्षित भी है तो घरवाले उसके नौकरी करने के विरोधी हो जाते हैं। परन्तु आज मुस्लिम नारियाँ भी नौकरी करती है और परिवार में सहयोग देती है। 'काला जल' के रसूल मुंशी की बड़ी लड़की ग्राम-सेविका है। 'अकेला पलाश' की तहमीना, महिला-मंडल की चेयरमैन है। 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख भी घरवालों के विरोध के बावजूद गाँव के स्कूल में टीचर बन कर सुख-शांति का अनुभव करती है और 'सूखा बरगद' की रशीदा भी रेडियो स्टेशन पर एनाउन्सर की नौकरी करती है।

मुस्लिम उपन्यासकारों ने उपर्युक्त नारियों के अतिरिक्त, अत्याधिक आधुनिक नारियों का चित्रण भी किया है। 'दास्तान-ए-लापता' की अनीसा का चरित्र सशक्त और स्मरणीय है।

निष्कर्ष रुप से कहा जा सकता है कि मुस्लिम उपन्यासकारों ने अपने समाज के अन्तर्विरोधों के साथ-साथ मुस्लिम नारियों के समक्ष खड़ी चुनौतियों, समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है। वे यह भी कामना करते हैं कि औसत मुस्लिम नारी के मानस में गहरे तक पैठ चुकी रुढ़िवादिता, धर्मान्धता की भावना समाप्त हो और स्त्री-शक्ति का नया रुप सामने आए।